ओ३म्

सन्ध्योपासन मीमांसा।

पण्डित मुसद्दीराम शर्म्मणा राजस्थानार्य्य प्रतिनिधि
सभार्य्योपदेशकेन पश्चिमोत्तरदेश प्रतिनिधि
सभा भूतपूर्व प्रचारकेण च
सङ्कलिता

तनैव स्वयं संशोध्य

अजमेर नगरे वैदिक यन्त्रालये
मुद्रापिता

खीष्टाब्दाः १९०० दयानन्दाब्दाः १७

प्रथमावृत्तौ ५०० } { मूल्य ‑)
डा०)॥

भूमिका

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥ ४० ॥

प्रियवाचकबृन्द इस वेद मन्त्र से क्या ही उत्तम उपदेश मिलता है कि हे जीव तू कर्म्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवन की इच्छा कर अन्यथा तेरे में बुरे २ कर्म प्रवल हों तुझे दुःखदायी होंगे इस कारण कर्मानुष्ठान परायण हो जो तुझे शांति प्राप्त होवे क्योंकि—

कर्मणैवहि संसिद्धि मास्थिताः जनकादयः ॥

जनक जैसे वड़े २ भूपाल कर्म्मों को करते २ ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं हे अर्जुन तू भी कर्म कर अपरंच गीतायां। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः।

अर्थात् कर्म करने में ही तेरा अधिकार है न कि फलों में, इस कारण मनुष्य का कर्त्तव्य यही है कि वो निष्काम कर्म करता चला जावे क्यों कि कर्मकाण्ड के करे बिना मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता अन्तःकरण शुद्धि बिना ज्ञान नहीं. बिना ज्ञान के ईश्वर का मिलना कठिन तथा असम्भव है ईश्वर प्राप्ति के बिना मनुष्य के आत्मा को यथार्थ शान्ति नहीं मिल सक्ती इसलिये कर्मकांड का करना प्राणिमात्र के लिये परमावश्यक है इस कथन से ज्ञात होता है जैसे बिना साबुन के वस्त्र से मल दूर नहीं हो सक्ता, बस ठीक इसी प्रकार बिना कर्मकाण्ड रूपी साबुन के आत्मा रूपी वस्त्र से अपकर्म रूपी मल दूर नहीं हो सक्ता, फिर शान्ति की सम्भावना तो कैसे की जा सक्ती है जिस पुरुष के हृदय में शान्ति की स्पृहा होवे वो संपूर्ण सन्ताप नाशक संध्योपासन कर्म का आरम्भ करे शम् ॥

अजमेर
ता० ३०-३-१९००

भवदीय
मुसद्दीरामः

ओ३म्

नत्वा नारायणं देवं ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम्। लोकानामुपकाराय नित्यकर्म्म तनोम्यहम् ॥ १ ॥

ओं शन्नो॑ देवीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑। शंयोर॒भिस्र॑वन्तु नः॥ यजु०। अ० ३६। मं० १२॥

सो अब इस आचमन मन्त्र का अर्थ लिखते हैं ॥ (देव्यापः) सबका प्रकाशक सब को आनन्द देने वाला तथा सर्वव्यापक ईश्वर (अभिष्टये) मनोवाञ्छित आनन्दभोग के लिये और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (नः) हम को (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) हो अर्थात् हमारा कल्याण करे (ता आपो देव्यः) वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वथा वृष्टि करे श्लेषालङ्कार से यह भी अर्थ ठीक हो सक्ता है कि (देव्यापः दिव्य जल हमारे म-

नोवाञ्छित पान के लिये सुखद हों इस मन्त्र के जल परक होने से आचमन में ग्रहण किया गया है ॥

इस मन्त्र को बोल कर पवित्र जल के तीन आचमन करे, आचमन और मार्जन में जल का विशेष उपयोग इसलिये है कि उपासना की एकाग्रता में जल के समान कोई पदार्थ परम सहायक नहीं इसी लिये जल का नाम वरुण है अर्थात् जो शुद्धरूप स्पर्श से ही इतर पदार्थों को शुद्ध कर देवे शास्त्रों में उसको वरुण कहते हैं" यहां इतना ध्यान रहे कि जो वेद मर्यादानुसार व्रतानुष्ठान और श्रद्धादि से तर्क कुतर्क छोड़ शुद्धभाव से उपासना करे उसी को उचित फल प्राप्त होते हैं, तथा च यजुर्वेदे ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणया श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

सत्य ब्रह्मचर्य्य तप दान शुद्धभाव सत्य प्रतिज्ञादि व्रतों से दीक्षित अर्थात् यज्ञानुष्ठाता कहलाता है तथा इसी दीक्षा से

ब्रह्मचर्य्यादि धर्म्मों के पालनार्थ आत्मबल उन्नत हो दुराचारों से बचकर शुभाचारों की विशेष प्रवृत्तिरूप दक्षिणा पाता है ये ही दक्षिणा आत्मा को निर्मल करती हुई शुभानुष्ठानों की कर्त्तव्यता में श्रद्धा अर्थात् भक्ति विशेष उत्पन्न करती है इन को निर्विघ्न पालन करने के योगसाधनों के अनुष्ठानों की प्रबल तपस्या से मनुष्य सत्यरूप परमेश्वर को यथार्थ पाता है इति मन्त्रार्थः ॥ इस आचमन मंत्र के उपदेश से यह भी जाना जाता है कि दुष्टभाव मनुष्य को लोक परलोक में सद्गति और परमार्थ की प्राप्ति कभी नहीं होती, यथा यजुर्वेदे—

असूर्य्या नाम॒ते लो॒का अ॒न्धेन॒ तम॒सावृ॑ताः । ताँस्ते प्रेत्यापि॑ गच्छन्ति॒ ये के चा॑त्म॒हनो॒जनाः॑ ॥

अर्थ—सूर्य्यादि प्रकाशों से रहित अत्यन्त अन्धकार युक्त लोकों में वे मनुष्य प्राप्त होते हैं जो आत्म हत्यारे अर्थात् आत्मा के विपरीत दुष्टभाव से मन वचन कर्म्म द्वारा विरुद्ध चेष्टा क-

रते हैं और अन्तरात्मा के चोर हैं अतएव मनुजी का भी उपदेश है कि—

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिंगच्छन्ति कर्हिचित्॥

अर्थात् वेदविज्ञान त्याग अर्थात् सुखोपयोगी द्रव्यों से विरक्त होना यज्ञ कर्म नियम अर्थात् सध्याग्निहोत्रादि धर्मों के यथोचित् समय पालन में सावधान रहना और (तपांसि) अर्थात् मन वचन कर्म से सत्यादि पालन में दृढ़प्रतिज्ञायुक्त होना पूर्वोक्त इन धर्मों से लेकर कर्म धर्म संपूर्ण दुष्टभाव अर्थात् छल कपट विश्वासघातादि दोषों से आत्मा के विपरीत मिथ्याचारी मनुष्य के निष्फल हो कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते– ये ही श्रीकृष्ण चन्द्र का गीता में उपदेश है कि—

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्॥ इन्द्रियार्थान् विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

अर्थात् दंम्भादि दोष संयुक्त जो नेत्रादि इंद्रियों को रोक

रूपादिविषयों को मन से भोगों की अभिलाषा करता हो उस मूढ़ात्मा का मिथ्याचार शास्त्र में कहा है जिस की शुद्धि में शास्त्रानुष्ठान भी लाचार है यथादक्षस्मृतौ ॥

मृत्तिका नां सहस्रैस्तु उदक कुंभ शतैरपि ।
न शुद्ध्यन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः॥

अर्थात् चाहे हजारों मन मिट्टी और सैकड़ों पानीके कलशों से शरीर का मज्जन क्यों न करे वह दुरात्मा कभी शुद्ध नहीं होता जिसका मलीन मन अपना कल्याण तथा अन्य प्राणियों के लिये दुःख होने की अभिलाषा रखताहो । यहां वास्तव में वक्तव्य यह है कि मनुष्य जन्म की सफलता स्त्री आदि पदार्थों के रूपादि विषयों के भोग सम्पत्ति से नहीं है क्योंकि भोग संपत्ति की समता से जो मनुष्य तथा पशु जाति के उत्तम मध्यमाधम दर्जे युक्ति प्रमाण सिद्ध होते हैं केवल कथन मात्र रह कर व्यभिचारादि में समानही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है जिस में इन दोनों का एक ही कर्म पाया जाता है परन्तु पशु कर्म्म से विद्याबुद्धिसिद्ध सर्वलोकोपकारी कार्य्यों को भी सिद्ध

कर सक्ता हैं इसलिये मनुष्य का परम कर्त्तव्य विषय वासना जन्य भोग प्रवृत्ति के ही लिये नहीं है दूसरी यह भी बात है कि प्रयोजन के बिना किसी भी प्राणी की प्रवृत्ति देखने में नहीं आती अतः यदि विषयानुरागजन्य विशेष सुखका बंधन प्राणी मात्र मेंन हो तो मनुष्यादि प्राणियों की उत्पत्ति होना ही असम्भव होजावे इसी कारण कृष्ण जी गीता में कहते हैं कि

देवीह्येषा गुणमयी ममम माया दुरत्यया।
मा मेव प्रतिपद्यन्ते मायामेतां तरन्तिते ॥

अर्थात् सत रज तम इन तीन गुणों के प्रवल बंधनवाली यह सुन्दर मनोहरिणी प्रकृति माया है जो शुद्ध भाव से ईश्वर की ही शरण लेते हैं वे ही मोह जाल से तरते हैं ।

तथाचपुनर्गीतायां श्रीकृष्णदेवः ॥ नमांदुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ॥ मायया परिहृतज्ञाना आसुरं भाव माश्रिताः ॥

अर्थात् माया मोह जंजाल से आत्मीयज्ञान जिन का नष्ट हो गया है वे असुर बुद्धि अधम मनुष्य परमेश्वर को कभी

पा नहीं सकते किन्तु सदा काम क्रोध लोभादि आसुरी संपत्ति के कर्म्मों में ही विशेष अभिलाषा में फसे रहते हैं इसी कारण ईश्वर की प्राप्ति का अधिकारी उत्तम मनुष्यों में भी अत्यन्त ही दुर्लभ है क्यों कि निरंकुश आसुरी बुद्धि अपने नास्तिक स्वभाव से सदा वेद शास्त्रोक्त शिष्ट मर्य्यादा को मिथ्या जान अपने पीछे चलाये रहती है और अपनेही को सर्वोपरि जान वो सांसारिक धंधो में सदा डूबाये रहती हैं परं गीता में यों कहा है कि

येशास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तन्ते कामका· रतः। नस सिद्धिमवाप्नोति न सुखं नपरां· गतिम्। तस्माच्छा स्त्रं प्रमाणं ते कार्य्याका- र्यै व्यवस्थितौ ज्ञात्वा शास्त्र विधानेन कर्म· कर्त्तुमिहार्हसि ॥ २ ॥

अर्थात् जो शास्त्र विधि को त्याग अपनी इच्छा से ही सबकाम किया करते हैं न तो वे सिद्धि को प्राप्त होते न सुख पाते और न परम गति कभी पासक्ते है इस कारण हे अर्जुन कार्यों की विधिनिषेध में शास्त्र को ही सर्वोपरि प्रमाण जान

कर उस की आज्ञानुसार कर्म कर जो तुझे सर्व सुखदायिनी सिद्धि को देवे ॥ इस पूर्वोक्त विचार से सिद्ध हुवा कि जैसे सूर्यादि प्रकाश की सहायताके विना नेत्र रूपको नहीं देख सक्ता इसी प्रकार शास्त्र विज्ञान की सहायता के विना मनुष्य की बुद्धि परमकल्याण कारी कर्म्मों को कभी नहीं निश्चयकर सक्ती इस लिये शस्त्रोक्त मर्य्यादा के अनुसार बुद्धि का शोधन कर जैसे धर्मार्थ काम मोक्ष रूप मनुष्य जन्म के फलों की प्राप्ति का विशेष मार्ग दर्शाया है उस वेद शास्त्रोक्त सनातन अन्तरङ्ग उपदेश की उपासना इस ग्रंथ में दर्शाई जावेगी ॥

बलेन पर राष्ट्राणि गृह्णन् शूरस्तु नोच्यते ॥ जितं येनेन्द्रियग्रामं सशूरःप्रोच्यते बुधैः ॥

दत्तस्मृतौ" अर्थात् जिस वीर ने अपने प्रबल बल से अन्य राजाओं के देश जीत लिये हों उसे मुनिजन वीर नहीं कहते किन्तु जिसनेनिज इन्द्रिय ग्राम को शास्त्रोक्त प्रबल तपस्या से जीत लिया हो वही परम शूर है क्यों कि इनके जीत

ने काही सुख परम पद की प्राप्ति का मुख्य मार्ग वतलाया है अतएव गीता में ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नचा युक्तस्य भावना।
नचा भावयतः शान्ति रशान्तस्य कुतः सुखम् ॥

अर्थात् शास्त्रोक्त योग युक्तिकी एकाग्रता विना विक्षिप्त चित्त की सर्वकार्य्यदत्त बुद्धि कभी नहीं होती तथा श्रद्धा भी नहीं होती श्रद्धा के विना शान्ति की प्राप्ति नहीं होती फिर शान्ति के विना भला सुख कहां इस लिये सर्वोपद्रवों की निवृत्ति और परम शान्ति की प्राप्ति रूप संध्योपासनाका उपदेश किया जाता है ॥

भवदीय
मुसद्दीरामः

अथ सन्ध्या प्रयोगः ॥

सर्व साधारण को ज्ञात हो कि प्राचीन और नवीन सन्ध्या के भेदों से उपासना की प्रणाली में प्रामाण्य वा अप्रामाण्य की शङ्का हेतु वादी मनुष्यों में विशेषकर पाई जाती है यह वास्तव में ठीक नहीं क्योंकि जिन वेदादि सत्य शास्त्रों के विज्ञाता श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी जैसे विद्वानों ने यावद्वेद धर्मानुयायी मनुष्य मात्र के लिये एक ही सन्ध्या का उपदेश किया है वास्तव में कृष्ण यजुर्वेद और तैत्तरेय आरण्यक ब्राह्मणादिकर्म कलाप के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात हुवा कि ऋग्वेदी सन्ध्या तथा कृष्ण यजुर्वेदी वा शुक्ल यजुर्वेदी सन्ध्या के अनेक भेद स्वस्व वेदाभिमानी ब्राह्मण वंशों के भिन्न भिन्न सम्प्रदायी विद्वानों के कल्पितमात्र हैं इस विशेष विवेचन को अति परिश्रम से अनेक ग्रन्थों की मर्यादा देख सन्ध्योपासनमीमांसा का ग्रन्थ बनाया है इस में किसी मत विशेष का पक्षपात किञ्चित भी नहीं केवल नित्योपासना का इस में उपदेश है

अब संध्या कर्म मर्यादा कहते हैं ॥

प्रथम शरीर के समस्ताङ्गोपाङ्गों को शुद्ध और शान्त कर आसन पर बैठ अन्तःकरणचतुष्टय अर्थात् मन बुद्धि चित्त अहङ्कार को राग द्वेष मोह कपट छल आदि दोषों से निवृत्त कर पवित्र करे पश्चात् शान्तात्मा पद्मासन पर बैठ परम श्रद्धा भक्ति से निम्न लिखित मन्त्र बोल तीन आचमन करे । मन्त्रो यथा—

ओं शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः । यजु० अ० ३६ मं० १२ ॥

तत्पश्चात् जल से आत्मा को वेष्टनकर ऋत मित्यादि अघमर्षण मन्त्र से फिर तीन आचमन करे पश्चात् गायत्री मन्त्र से शिखाबन्धन कर रक्षा करे अर्थात् स्वानुष्ठानकीनिर्विघ्न समाप्ति के हेतु ईश्वर सर्वान्तयामी से प्रार्थना करे फिर निम्न लिखित मन्त्र से प्राणायाम का अभ्यास करे ॥

ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् ॥

इस मन्त्र को प्रथम स्वप्राणवायु वशवर्त्ती करने के लिये बाँई नासिका द्वारा सहज से चित्त में यावत्काल एकवार मन्त्र का उच्चारण पूरा हो तावत्काल विलम्ब से बाहर की पवन धीरे धीरे कोष्ठ में पूरक करे तावत्काल तक कुम्भक में और रेचक में रोक कर सहज से छोड़े फिर बाँई नासिका दवा कर दहनी नासिका से पवन का पूरक करे तथा कुम्भक कर बाँई नासिका द्वारा रेचक करे इसी प्रकार तीन आवृत्तियों से एक प्राणायाम की अर्थात् नौ प्राणसंयम द्वारा नौ प्राणायाम मन्त्रों की आवृत्ति एक प्राणायाम कहलाता है जो मनुष्य चित्तशुद्धि तथा मनकी एकाग्रतादि फलों की इच्छा करे वह दोनों काल नियमित सन्ध्या से प्रतिकाल १० दश प्राणायाम अवश्य करें प्राणायाम मन्त्र का अर्थ गायत्री मन्त्रार्थकरण काल में किया जावे गा ॥

॥ अथ प्राणायाम लक्षणम् ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसासह ॥
त्रिः पठे दायतः प्राणः प्राणायाम स उच्यते ॥

अर्थात् प्रणव व्याहृतियां और शिरो भाग अर्थात् आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् के सहित गायत्री मन्त्र के तीन वार प्राणवायु को रोककर पढ़ने को प्राणायाम कहते हैं जिस का यह फल है ॥

प्राणञ्चेदिड़या पिवेत् परिमितं भूयोऽन्यया रेचयेत् । पीत्वा पिङ्गलया समीरणमलं बद्धा त्यजेद्वामया ॥ सूर्याचन्द्रमसावनेन विधिना विंवद्वयं ध्यायतः । शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः ॥

अर्थः—यदि प्राणवायु, इड़ा, बाँई नासिका से पीवे तो (परिमित) कुम्भक में यथाशक्ति रोक दहनी नासिका से छोडे फिर (पीत्वा पिंगलया समीरणमलं) दाहिनी नासिका से छोड़े इसी विधि से सूर्य्य और चन्द्रमा अर्थात् दहनी, बाँई नासिका से प्रतिदिन प्राणायाम का अभ्यास करने से संयमी का तीन मास के उपरान्त नाड़ीचक्र शुद्ध हो जाता है येही मनुजी भी कहते हैं ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा म-

ला: ॥ तथेन्द्रियाणांदह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

अर्थात् जैसे सुवर्णर जतादि धातुयों के अग्नि में तपानेसे उन के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही विधि पूर्वक प्राणायाम करने से इन्द्रियों के सर्व दोष नष्ट हो जाते हैं इसी कारण प्राणायाम योग साधनों में सर्वोत्तम अङ्ग हैं योग के आचार्य्य महर्षि पतञ्जलि का कथन है।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिरा विवेक ख्यातेः ॥

प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है जबतक परम गति न हो तबतक उस के आत्मा का ज्ञान निरन्तर बढ़ता जाता है ॥

अथेंद्रियस्पर्शः

ओं वाक वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः।

ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकरपृष्ठे ॥

इन प्रत्येक वाक्यों को बोलता हुवा इन्द्रियस्पर्श इस तात्पर्य्य से करे कि परमात्मा इन्द्रियों को बलवान् बनाये रहे ॥

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमंत्राः ॥

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि ओं खम्ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

ओं भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् ॥

येह नाम परमात्मा के हैं इनको पढ़ता हुवा अर्थ विचार पूर्वक मार्जन करे मार्जन और आचमन में जल का विशेष उपयोग एतदर्थ है कि उपासना की एकाग्रता में जल के समान सहायक दूसरा पदार्थ नहीं है ॥

अथाघमर्षणमंत्रो यथा ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥

ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४८

(अस्यार्थः) शास्त्र में स्वरूप से अजर अमर अविनाशी और नित्य इसजीवात्मा को माया अर्थात् सत्वरजस्तमात्मक प्रकृति का नैमित्तिक कर्म जन्य सम्बन्ध अर्थात् जड़ चेतन सम्बन्धविशेष की ग्रन्थि जो लिंग शरीर संचित अर्थात् अनेक जन्म जन्मान्तरों के कर्म जो आत्मा में सदा प्रवाह रूप से चले आते है तथा जो क्रीयमाण जो वर्त्तमान शरीर से किये जाते हैं, प्रवृत्तिर्वाग् बुद्धिशरीरारम्भः न्याय सू, । अर्थात् वाणी

से तथा बुद्धि से और शरीर से वर्त्तमान प्रवृत्ति का कर्म क्रीयमाण कहलाता और भविष्यतकाल में इस शरीर वा अन्य शरीरों से जो होंगे उनको आगन्तुक कर्म कहते हैं येह सम्पूर्ण सर्वदा भोगने पडते हैं यदि इन सम्पूर्णों के फल भोगे पश्चात् सर्व दुःख निबृत्ति और परम पद मोक्ष की प्रप्ति का होना ही सम्भव होता तो किसी को भी मोक्ष की प्राप्ति न होती क्योंकि (अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्) इत्यादि उपदेश एक तो कर्म के प्रवल बल को बोधन करते दूसरा अनन्त संज्ञा वाले कर्म्मों का भोग एक काल में कभी समाप्त ही नहीं होसक्ता तृतीय येह भी शंका है कि पशु पक्षी आदि में तो कर्म बंधन की सम्भावना ही क्या है बल्कि मनुष्य जाती में भी कर्म फल का बंधन व्यभिचारी देखा जाता है अर्थात् करने पर भी न होना और न करने से भी अनेक फलों की प्राप्ति जगत मे देखी जाती है चतुर्थ यह भी प्रधान दोष है कि स्वाभाविक बंधन से नैमित्तिक बन्धन सदा निर्बल है क्योंकि जैसी हानि भोजन वा मलमूत्र का त्याग कर्म शरीर की करता है वैसी संध्या आदि त्याग से हानिनहीं होती ॥

इत्यादि अन्य अनंतगहन विचारों से कर्म गति का यथार्थ जानना अत्यन्त ही कठिन है तोभी शास्त्र दर्शितकर्मानुष्ठान द्वारा अधिकारी बुद्धि के विवेचन से ये सब कुतर्क परमार्थ के विरोधी और पुरुषार्थ की सत्तानाशक नास्तिकता के देने वाले सर्वथा बुद्धिमान् को त्याग ने योग्य हैं क्यों कि जैसे सूर्यादि प्रकाश की सहायता के बिना नेत्र रूप को नहीं देख सक्ता ठीक वैसे ही वेदादि सत्य शास्त्रों के विशेष विज्ञान के बिना मनुष्य की बुद्धि कर्मगति के पाने का अधिकार ही नहीं रखती प्रत्युत शास्त्र विज्ञाता होकर नैत्तिक नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान व्रतों को समाहित चित्त से परिपालन करने वाले महा योगीराज मुनि जनों को भी तीव्रतर समाधि आदि अतितपस्या से उतनी कर्म गति के विज्ञान का लाभ हुआ जितनी मात्र जीव को अधिकारहै अधिक नहीं फिर भी वे आप्त और सर्वज्ञ नामों से शास्त्रों में सत् कृत हुए यथा ॥

श्लोको यथा गीतायाम्

यावदर्थो उदपाने च सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावत् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य वि जानतः॥१॥

अर्थात् पात्र जो जल से परिपूर्ण हो उस से केवल पिपासा की निवृतिमात्र जल का प्रयोजन होता है तृप्ति होजा ने के पीछे फिर किसी भी जल विशेष की आवश्यकता नहीं रहती इतना ही अर्थात् तृप्ति मात्र ही वेद शास्त्रों के अनन्त विज्ञान में से विशेषविज्ञाता ब्राह्मण को प्राप्त होता है इत्यर्थः इस लिये कर्म गति का यथार्थ विज्ञाता केवल ईश्वर ही है ॥

अब मन्त्र की व्याख्या की जाती अर्थात्, अघमर्षण म न्त्र का अर्थबतलाया जाता है जिस में जगतकर्त्ता परमात्मा की महिमा की प्रार्थना है (धाता) सब जगत का धारण औ- र पोषण करने वाला तथा (वशी) सब को अपने वश में रखने वाला तथा परमेश्वर (यथा पूर्व) जैसा कि उस के सर्वज्ञ विज्ञान में जगत के रचने का विज्ञान था, और जिस प्र- कार पूर्व जगत की रचना की थी, और जैसे जीवों के पुण्य पाप थे उन के अनुसार से ईश्वरने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं (सूर्या चन्द्रमसौ) जैसे पूर्व कल्प में सूर्य्य च- न्द्रादि लोक रचे थे वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं (दिवम्) जैसे पूर्व कल्प में सूर्यादि लोकों का प्रकाश था तथा अब भी रचा एवं (पृथिवीम्) (अन्तरिक्षम्) जैसे पूर्व कल्प में पृथवी

और सर्वलोकस्थिति स्थापक आकाश और (स्वः) जितने आकाश में लोक हैं उन को (अकल्पयत्) रचा वैसे ही अब भीरचा और अनादि काल से संपूर्ण ब्रह्माण्डमय लोक लोकांतरों को जगदीश्वर समयानुसार सदा बनाया करता है वैसे ही वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा क्योंकि उस का ज्ञान सदा भूल चूक से राहित एक रस रहता है यही उस की सम्पूर्णता और सर्वज्ञपना है ॥

इसी कारण (यथापूर्वमकल्पयत्) इस पद का ग्रहण किया है तथा (विश्वस्य मिषतः) उसी परमात्मा ने सहज स्वभाव से जगत के रात्रि दिवस घटिका पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही (विदधत्) रचे हैं इस में यह संदेह होता है कि ईश्वर ने किस से ब्रह्माण्ड रचा तो इस का उत्तर यह है कि (अभीद्धातपसः) ईश्वर ने अपने अनंत सामर्थ्य से यह जगत रचा है—

अर्थात् ईश्वर ने अनन्त सामर्थ्यमय प्रेरणा से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लोकलोकान्तरों की रचना के कारण प्रकृति वा माया से बुद्धि पूर्वककार्यरूप दृश्यादि गुण कर्म स्वभाव युक्त ज-

गत को रचा क्योंकि ईश्वर स्वतंत्र महाराजाधिराज है और जीव उस की महिमा का बशवर्ती उस की नित्यप्रजा है तथा जगत का कारण नित्यरूप प्रकृति उस ईश्वर का खजाना है वह अपनी स्वतंत्रेच्छा से जगत का कर्ता है।

(ऋतम्) उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या के खजाने वेदशास्त्र को प्रकाशित किया है जैसा कि पूर्व कल्पों में था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा तथा (सत्यम्) जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व रज और तम इन तीन गुणों की माता प्रकृति है जो स्थूल और सूक्ष्म जगत का आदि कारण है सो भी (अध्यजायत) कार्य रूप हो पूर्वकल्प के समान उत्पन्न हुआ ॥

(ततो रात्र्यजायत) उसी सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगों के प्रमाण से जो महारात्री के नाम से प्रसिद्ध है वह भी पूर्वप्रलय के समान ही होती है और तावत्काल जीव और जगत के पदार्थ उस अंधकार से ढके रहते हैं (ततः समुद्रो अर्णवः) तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी तथा मेघ मण्डल में जो जहां समुद्र है सो भी पूर्व सृष्टि के समान ही

उत्पन्न हुआ है (समुद्रादर्णवा दधिसंवत्सरो अजायत) उसी समुद्र की उत्पति पश्चात् संवत्सर अर्थात क्षण मुहूर्त प्रहरादि काल भी पूर्ववत् उत्पन्न हुआ अर्थात् वेद से लेकर पृथिवी पर्यन्त जो यह जगत है सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है और ईश्वर सब को उत्पन्न कर के सब में व्यापक हो के अन्तर्य्यामी रूप से सब के पाप पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात को छोड़ सत्य न्याय से सब को यथावत् फल देता है इसी अंतर्यामी के साक्षात करने से जीव मुक्ति को प्राप्त होता है यथा मुण्डकोपनिषदि ॥

भिद्यतेहृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टेपरावरे ॥

अर्थात जब परमेश्वर के स्वरूप में आत्मा स्थित हो कर योग साधनों से अपने आत्मा की अत्यन्त शुद्धि कर लेता है और परमात्मा का जब साक्षात्कार होने से योगी के हृदयस्थ संदेहों की गांठ छिन्न भिन्न हो जाती है इसी कारण सन्देह नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण कर्म जो मोक्ष प्रतिबन्धक हैं उस के क्षीण होजाते हैं ॥

अर्थात् जो संचित क्रियमाण कर्मों का बन्धन जीव को परतंत्र कर अनेक उतम मध्यम और अधम योनि के चक्र में सदा चलाता आया वह कर्म बन्धन जीव का नष्ट हो जाता है तभी परम पद को पाता है उस के विना और कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं है ऐसी लोक परलोक में जन्म जरा मृत्यु के अनन्त क्लेश देने वाली प्रबल कर्म गति को देख कर सदा ईश्वर से भय करे और प्रथम मन वचन कर्म से पाप कर्म का सर्वथा परित्याग करे उसी का नाम अघमर्षण है अर्थात् जो आगन्तुक पाप कर्मों को सर्वथा परित्याग कर ईश्वराज्ञा पालनादि अनुष्ठानों से शुभ कर्मों को सदा तन मन धन से पालन करे जो उस के ब्रत का तप है उस से तो उस के कुकर्म नष्ट हो जाते है परन्तु जो मलीन वासना वाला ये चाहे कि उपासना से पाप निवृत्त कर लेंगे उस के लिये तो आत्मशुद्धि का वेदादि कोई भी साधन नहीं है ॥

अथ मनसापरिक्रमा मन्त्राः ।

प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितोरक्षितादित्याइषवः । तेभ्योनमोऽधिपतिभ्योनमोरक्षितृभ्यो

नम इषुभ्योनमएभ्यो अस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवोजम्भेदध्मः ॥ १ ॥ दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजीरक्षिता पितर इषवः । तेभ्योनमोऽधिपतिभ्योनमोरक्षितृभ्योनमइषुभ्यो नमएभ्योअस्तु । योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वोजम्भेदध्मः । ॥ २ ॥ प्रतीचीदिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षितान्नमिषवः । तेभ्योनमोधिपतिभ्यो नमोरक्षितृभ्योनम इषुभ्योनमएभ्योअस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥ उदीचीदिक्सोमोऽधिपतिः स्वजोरक्षिताशनिरिषवः । तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमोरक्षितृभ्यो नमइषुभ्यो नमएभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वोजम्भेदध्मः ॥ ४ ॥ ध्रुवादिग्विष्णु

रधिपतिः कल्माषग्रीवोरक्षितावीरुधइषवः ।
तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमोरक्षितृभ्योनमइषु-
भ्योनमएभ्यो अस्तु । योस्मान्द्वेष्टियंवयंद्वि-
ष्मस्तंवोजम्भेदध्मः ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वादिग्बृहस्प-
तिराधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो
नमोऽधिपतिभ्योनमोरक्षितृभ्योनमइषुभ्योनमं
एभ्योअस्तु । योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं-
वोजम्भेदध्मः । ६ । अथर्व का० ३ अ० ६
सू० २७ । मं १—६ ॥

इन अथर्ववेद के मन्त्रों का उच्चारण कर सम्पूर्ण दिशाओं में परमात्मा की अनन्त महिमा और परिपूर्णता का ध्यान करे अपने दुःखद अरिष्टों से बचने के लिये परमात्मा से सहायता की प्रार्थना करे ॥

(प्राचीदिक्) पूर्वदिशा में (अग्निः) प्रकाश स्वरूप ई-श्वर (अधिपतिः) स्वामी (असितः) अन्धियारे से (रक्षिता)

रक्षा करने वाला है । (आदित्याः) सूर्य्य की किरणें (इषवः) बाण रूप हैं । (जिस प्रकार बाणों से अपनी रक्षा और शत्रुओं का नाश किया जाता है इसी प्रकार सूर्य की किरणों से अनुकूलसेवियों की रक्षा और प्रतिकूलसेवन करने वालों का नाश इष्ट है (तेभ्यः, अधिपतिभ्यः, नमः) उस, स्वामी के लिये, आदर हो (रक्षितृभ्यो, नमः) रक्षक के लिये आदर हो (इषुभ्यः) उन बाणों के लिये (नमः) आदर हो (एभ्यः) इन सब के लिये (नमः अस्तु) आदर हो (योऽस्मान् द्वेष्टि) जो हम से द्वेष करता है (यं वयं द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं (तम्) उस द्वेष भाव को (वः) इन (अधिपति रक्षक और बाणों) के (जम्भे) दाढ़ में (दध्मः) धरते हैं । अर्थात् स्वामी रक्षक ईश्वर और उसके रचे सूर्य्यादि पदार्थों से हमारी रक्षा हो, हमारे द्वेषभाव का नाश हो जिस से हम अनर्थों से दूर रहकर सब के मित्र हों और सब कोई हमारा मित्र हो ॥

(दक्षिणा दिक्) दक्षिण दिशा में (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी है । (तिरश्चिराजीरक्षिता) सर्पादि की पङ्क्ति से रक्षा करता है (पितरः) चन्द्रकिरणें

(इषवः) बाणतुल्य हैं । (तेभ्यो नमो०) पूर्ववत् ॥ २ ॥

(प्रतीचीदिक्) पश्चिम दिशा में (वरुणः) वरणीय (सर्वोत्तम) भजनीय ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी है (पृदाकू रक्षिता) ज़हरीले प्राणियों से रक्षा करने वाला है (अन्नम्) अन्न (इषवः) बाण तुल्य हैं । शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

(उदीचीदिक्) उत्तर दिशा में (सोमः) शान्तस्वरूप ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी है (स्वजो रक्षिता) स्वयं उत्पन्न (कीट मशकादि) अमैथुनी सृष्टि से रक्षा करता है (अशनिः) बिजुली (इषवः) बाणतुल्य हैं ॥ शेष कह चुके हैं ॥ ४ ॥

(ध्रुवादिक्) नीचे की दिशा में (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी और (कल्माषग्रीवोरक्षिता) काली ग्रीवा वाले से रक्षा करता है (वीरुधः) वनस्पत्यादि (इषवः) बाण तुल्य हैं ॥ शेष कहा जा चुका है ॥ ५ ॥

(ऊर्ध्वादिक्) ऊपर की दिशा में (बृहस्पतिः) बड़ों का बड़ा ईश्वर (अधिपतिः) स्वामी और (श्वित्रो रक्षिता) श्वेत कुष्ठादि से रक्षा करने वाला है (वर्षम्) वर्षा (इषवः) बाण तुल्य हैं । शेष उक्तप्रकार जानो ॥ ६ ॥

॥ इन २ दिशाओं से इन वाण रूप पदार्थों का किसी प्रकार का अदृष्ट सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है। जिस प्रकार अन्धियारे से सूर्य्य की किरणों द्वारा रक्षा और अन्धियारे का नाश होता है। इसी प्रकार (तिर्यक्) कीटों से रक्षा के लिये चन्द्रकिरणों के द्वारा अमृत स्रवित होकर उन का अपगुण दबता है। आगे भी इसी प्रकार जहां तक बुद्धि पहुंचे वहां तक अनुसन्धान हो सकता है ॥

अथोपस्थानमन्त्राः ॥

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरं। देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥ य० अ०। ३५ म०। १४ ॥

अर्थः—हे परमेश्वर (तमसस्परिस्वः) सब अन्धकार से अलग प्रकाशस्वरूप (उत्तरम्) प्रलय के पीछे भी सदा एकरस वर्तमान (देवंदेवत्रा) सूर्यादि देवों के भी प्रकाशक (सूर्यम्) चराचर के आत्मा (ज्योतिरुत्तमम्) ज्ञानस्वरूप और सब से उत्तम आप को जान के (वयमुदगन्म) हम शुद्ध भाव से

आप के शरणागत हुए हैं हमारी रक्षा कीजिये इत्यर्थः ॥

ओं उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ यजु० अ० ३३ मं० ३१॥

अर्थः—(उदुत्यंजातवेदसं) जिस से वेद प्रकाशित हुए तथा पृथिव्यादि भूतों में जो व्याप्त है और जगत की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का प्रधान कारण है (देवम्) जो देवों का देव (सूर्य्यम्) सब जीवादि जगत का प्रकाशक अन्तरात्मा है (त्यम्) उस परमात्मा को विश्वविद्या की प्राप्ति के लिये हमलोग उपासना करते हैं (उद्वहन्ति केतवः) जिस को वेदों के मन्त्र और जगत के भिन्न २ नियमित गुण दृष्टान्त रूप हो कर अनन्त महिमा वाली उस की रचना कोजितला रहे हैं उस सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की उपासना हम सदा करें ॥

ओं चित्रं देवाना मुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥३॥ यजु० अ० ७ मं० ४२ ॥

अर्थः—(चित्रंदेवाना) (सूर्यआत्मा) जड़ चेतन जगत

का जो आत्मा व चराचर का प्रकाशक सूर्य्य है (आप्राद्यावा) और सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति स्थिति प्रलय का कर्ता है (चक्षुर्मित्रस्य) जो राग द्वेष आदि रहित सत्पुरुषों का तथा सूर्य्य का और प्राण का भी प्रकाश करने वाला है (वरुणस्या) यज्ञानुष्ठाता मनुष्यों के दश प्राणवायु और ग्यारहवें जीव का तथा अग्नि का प्रकाश करने वाला है (चित्रंदेवानां) जो अद्भुत स्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है (अनीकम्) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये सर्वोत्तम बल है वह परमेश्वर (उदगात्) हमारे हृदयो में यथावत् प्रकाशित रहे इत्यर्थः ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥ यजु॰ ३६ । मं॰ २४ ॥

अर्थः–(तच्चक्षुर्देवहितम्)जो ब्रह्म सबका द्रष्टा धार्मिक विद्वानों का परमहित कारक तथा (पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्) सृष्टि के पूर्व पश्चात् और मध्य में सदा सत्यस्वरूप से वर्तमान रहता सब जगत का करने वाला है (पश्येम शरदः शतम्) उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्षतक देखें (जीवेम)

सौ वर्ष हम जीवें (शृणुयाम) सौ वर्ष सुनें (प्रब्रवाम) सौ वर्ष उसी ब्रह्म का उपदेश करें (अदीनाः स्याम) उस की कृपा से किसी के आधीन न रहें (भूयश्च शरदः शतात्) परमेश्वर की कृपा से हम सौ वर्ष से उपरान्त भी जीवन दर्शन श्रवण भाषण आदि शक्तियों को प्राप्त होवें इत्यर्थः ॥ ४ ॥

इस प्रकार उपस्थान के मन्त्रों का अर्थ विचार पूर्वक आत्मा और मन को परमात्मा में अनन्य भाव से जोड़कर स्तुति और प्रार्थना सदा करें ॥

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ य० ३६ ॥ मं० ३ ॥

अर्थः—अकार उकार और मकार के योग से जो ओम् यह अक्षर सिद्ध है सो यह सर्व नामों से परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम इसी लिये है कि अ मात्रा से ऋग्वेद की म मात्रा से सामवेद और अमात्रक नाम अर्द्धमात्रा से अथर्ववेद की उत्पत्ति माण्डूक्योपानिषद में विस्तार से उपदेश की है इसी कारण

ईश्वर के सम्पूर्ण नाम इस में आ जाते हैं जैसे अकार से विराट्, जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है (अग्नि) जो ज्ञान स्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है (विष्णु) जिस में सब जगत् प्रवेश कर रहा है तथा जो सर्वत्र प्रविष्ट है इत्यादि नाम अमात्रा के अर्थ से होते हैं तथा (आदित्यः) जो नाश रहित है (प्राज्ञः) जो ज्ञान स्वरूप और सर्वज्ञ है नकार मात्रा से और उ मात्रा से भी हिरण्यगर्भ वायु आदि आ जाते हैं ॥

अब व्याहृतियों के अर्थ लिखते हैं । जो प्राणप्रिय परमात्मा उस को (भूः) कहते जो सबदुःखों का नाशक उस को (भुवः) जो सदा आनन्द रूप उस को (स्वः) जो सर्व पूज्य उसको (महः) जो सर्व पिता उस को (जनः) जो ज्ञान स्वरूप सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी उस को (तपः) और जो सदा निर्विकार रूप एक रस है उस परमेश्वर को (सत्यं) कहते हैं ॥ अब गायत्री० । (सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य का दाता है (देवस्य) जो सब की आत्माओं का प्रकाश करने वाला है और सब सुखों का दाता है (वरेण्यं) जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य है (भर्गः) जो शुद्ध

विज्ञान स्वरूप है (तत्) उस को (धीमहि) हम लोग सदा श्रद्धा से निश्चय कर के अपने आत्मा में धारण करें इस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है (वः) (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा कर के सब बुरे कामों से अलग कर सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ य० अ० १६ मं० ४१ ॥

(नमः) नमस्कार हो उस (शम्भवाय) सुखस्वरूप परमेश्वर को (च) और (मयोभवायच) और संसार सर्वोत्तम सुखों के दाता को । (नमः) नमस्कार हो (शङ्कराय) मङ्गल करने वाले (च) और (मयस्करायच) धर्म की शिक्षा करने वाले को (नमः) नमस्कार हो (शिवाय) मङ्गल स्वरूप (च) और (शिवतरायच) मोक्ष दाता को ॥

इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक्

उपासना करके आगे समर्पण करे कि, हे ईश्वर दयानिधे ! आप की कृपा से जो २ उत्तम काम हम लोग करते हैं वह सब आप के अर्पण हैं। जिस से हम लोग आप को प्राप्त हो के धर्म जो सत्य न्याय, का आचरण करना है, अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम जो धर्म अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूटकर आनन्द में रहना है। इन चार पदार्थों की सिद्धि हम को शीघ्र प्राप्त हो। इस के पीछे ईश्वर की वन्दना करे। इति सन्ध्या ॥

निम्न लिखित पते पर पुस्तक मिलेगी :—

पं० तुलसीराम स्वामी
स्वामियन्त्रालय
मेरठ

पं० मुसद्दीराम शर्मा
आर्य्योपदेशक
राजस्थान
अजमेर

पुस्तक लौटाने की तिथि अन्त में अङ्कित है। इस तिथि को पुस्तक न लौटाने पर छै नये पैसे प्रति पुस्तक अतिरिक्त दिनों का अर्थदण्ड लगेगा।